॥ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

अथैकादशोऽध्यायः

(ग्यारहवाँ अध्याय)

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम॥ १॥

अर्जुन बोले—

मदनुग्रहाय	= केवल मुझपर कृपा करनेके लिये	**गुह्यम्**	= गोपनीय	**तेन**	= उससे
त्वया	= आपने	**अध्यात्म-सञ्ज्ञितम्**	= अध्यात्म-विषयक	**मम**	= मेरा
यत्	= जो	**वचः**	= वचन	**अयम्**	= यह
परमम्	= परम	**उक्तम्**	= कहे,	**मोहः**	= मोह
				विगतः	= नष्ट हो गया है।

विशेष भाव—अर्जुन कहते हैं कि आपने जो वचन कहे हैं, वे केवल मेरेपर कृपा करके ही कहे हैं, अपनी विद्वत्ता बतानेके लिये नहीं। इसमें केवल कृपाके अलावा और कोई हेतु नहीं है।

सम्पूर्ण प्राणियोंके आदि, मध्य तथा अन्तमें मैं ही हूँ (१०। २०), मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंका बीज हूँ (१०। ३९), ऐश्वर्य, शोभा और बलसे युक्त प्रत्येक वस्तुको मेरे ही योगके अंशसे उत्पन्न हुई समझो (१०। ४०), मैं अपने एक अंशसे सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हूँ (१०। ४२)—इन वचनोंको सुननेसे अर्जुनको ऐसा लगा कि मेरा मोह नष्ट हो गया है। परन्तु वास्तवमें उनका आंशिक मोह नष्ट हुआ है, पूरा नहीं।

~~~

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्॥ २॥

हि	= क्योंकि	**मया**	= मैंने	**अव्ययम्**	= अविनाशी
कमलपत्राक्ष	= हे कमलनयन!	**विस्तरशः**	= विस्तारपूर्वक	**माहात्म्यम्**	= माहात्म्य
भूतानाम्	= सम्पूर्ण प्राणियोंके	**त्वत्तः**	= आपसे ही		
		श्रुतौ	= सुने हैं	**अपि**	= भी (सुना है)।
भवाप्ययौ	= उत्पत्ति तथा विनाश	**च**	= और (आपका)		

विशेष भाव—इस श्लोकमें अर्जुन अपनी दृष्टिसे मोह नष्ट होनेका कारण बताते हैं।

'माहात्म्यमपि चाव्ययम्'—यहाँ **'अपि'** पदसे ऐसा अर्थ निकलता है कि अर्जुनने भगवान्‌का विनाशी माहात्म्य भी सुना है और अविनाशी माहात्म्य भी सुना है। **'भवाप्ययौ हि भूतानाम्'**—यह भगवान्‌का विनाशी अर्थात् परिवर्तनशील माहात्म्य है। मनुष्य भगवान्‌के साथ किसी भी प्रकारसे सम्बन्ध जोड़ ले तो वह कल्याण ही करेगा—यह भगवान्‌का अविनाशी अर्थात् अपरिवर्तनशील माहात्म्य है। तात्पर्य है कि सत्-असत् सब कुछ भगवान् ही हैं—**'सदसच्चाहम्'** (गीता ९। १९)।

~~~

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम॥ ३॥

पुरुषोत्तम	= हे पुरुषोत्तम!	**एतत्**	= यह (वास्तवमें)	**ऐश्वरम्**	= ईश्वर-सम्बन्धी
त्वम्	= आप	**एवम्**	= ऐसा ही है।	**रूपम्**	= रूपको (मैं)
आत्मानम्	= अपने-आपको	**परमेश्वर**	= हे परमेश्वर!		
यथा	= जैसा			**द्रष्टुम्**	= देखना
आत्थ	= कहते हैं,	**ते**	= आपके	**इच्छामि**	= चाहता हूँ।

विशेष भाव—अर्जुनके कथनका तात्पर्य है कि मैंने आपकी बातोंको सुनकर ठीक समझ लिया है और अब उसमें कोई सन्देह नहीं रहा है। सब कुछ आप ही हैं—यह ठीक ऐसा ही है। अब केवल आपका ईश्वर-सम्बन्धी रूप देखना बाकी रह गया है।

उपदेश दो तरहसे होता है—कहना और करके दिखाना। पहले दसवें अध्यायमें भगवान्‌ने अपने समग्र रूपका वर्णन किया कि मैं अपने एक अंशसे सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हूँ। अब इस अध्यायमें अर्जुन उसी रूपको प्रत्यक्ष दिखानेकी प्रार्थना करते हैं।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्॥ ४॥

प्रभो	= हे प्रभो!	**इति**	= —ऐसा	**त्वम्**	= आप
मया	= मेरे द्वारा	**यदि**	= अगर	**आत्मानम्**	= अपने (उस)
तत्	= (आपका) वह ऐश्वर रूप	**मन्यसे**	= (आप) मानते हैं,	**अव्ययम्**	= अविनाशी स्वरूपको
द्रष्टुम्	= देखा	**ततः**	= तो	**मे**	= मुझे
शक्यम्	= जा सकता है	**योगेश्वर**	= हे योगेश्वर!	**दर्शय**	= दिखा दीजिये।

विशेष भाव—भगवान्‌के विश्वरूपको 'अव्यय' (अविनाशी) कहनेसे यह सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण संसार भगवान्‌का ही स्वरूप है। अव्यय होनेसे इसका अत्यन्त अभाव नहीं होता (गीता १५। १)। वास्तवमें परिवर्तनशील (असत्) और अपरिवर्तनशील (सत्)—दोनों ही मिलकर भगवान्‌का समग्ररूप है—'**सदसच्चाहमर्जुन**'। जड़ता केवल अपनी आसक्ति और अज्ञताके कारण ही प्रतीत होती है।

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥ ५॥

श्रीभगवान् बोले—

पार्थ	= हे पृथानन्दन!	**च**	= और	**सहस्रशः**	= हजारों
अथ	= अब	**नाना-वर्णाकृतीनि**	= अनेक वर्णों (रंगों) तथा आकृतियोंवाले	**दिव्यानि**	= अलौकिक
मे	= मेरे			**रूपाणि**	= रूपोंको
नानाविधानि	= अनेक तरहके	**शतशः**	= सैकड़ों-	**पश्य**	= (तू) देख।

विशेष भाव—अर्जुनने तो अपनेको असमर्थ मानकर भगवान्‌से अपना एक ऐश्वररूप दिखानेकी प्रार्थना की थी और उसको भगवान्‌की इच्छापर छोड़ दिया था, पर भगवान् उनको सैकड़ों-हजारों रूपोंको देखनेकी बात कहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि भगवान्‌की इच्छापर छोड़नेसे साधकको जो लाभ होता है, वह अपनी इच्छासे, अपनी बुद्धिसे नहीं होता। कारण कि मनुष्य कितनी ही विद्याएँ, कला-कौशल आदि सीख ले, कितने ही शास्त्र पढ़ ले तो भी उसकी बुद्धि तुच्छ, सीमित ही रहती है। साधकमें जितनी सरलता, निर्बलता, निरभिमानताका भाव होगा, उतना ही वह भगवान्‌को जानेगा। अपना अभिमान करके साधक भगवान्‌को जाननेमें आड़ ही लगाता है। वह जितना समझदार बनता है, उतना ही बेसमझ रहता है। अपनेको समझदार माननेसे वह समझदारीका गुलाम हो जाता है। वह जितना निरभिमान होता है, समझदारीका अभिमान नहीं करता, उतना ही वह समझदार होता है।

~~~

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत॥ ६॥

भारत	=हे भरतवंशोद्भव अर्जुन!	**अश्विनौ**	=दो अश्विनी-कुमारोंको	**अदृष्टपूर्वाणि**	=जिनको तूने पहले कभी देखा नहीं,
आदित्यान्	=बारह आदित्योंको,	**तथा**	=तथा	**बहूनि**	=(ऐसे) बहुत-से
वसून्	=आठ वसुओंको,	**मरुतः**	=उन्चास मरुद्गणोंको	**आश्चर्याणि**	=आश्चर्यजनक रूपोंको (भी)
रुद्रान्	=ग्यारह रुद्रोंको (और)	**पश्य**	=देख।	**पश्य**	=(तू) देख।

विशेष भाव—पिछले श्लोकमें भगवान्‌ने विराट्‌रूपमें अनेक तरहके और अनेक रंगों तथा आकृतियोंवाले रूपोंको देखनेकी बात कही थी, अब उसी बातको इस श्लोकमें विस्तारसे कहते हैं।

भगवान्‌के कथनका तात्पर्य है कि सभी देवता मेरे स्वरूप हैं अर्थात् उन देवताओंके रूपमें मैं ही हूँ (गीता ९। २३)।

~~~

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि॥ ७॥

गुडाकेश	=हे नींदको जीतनेवाले अर्जुन!	**सचराचरम्**	=चराचर-सहित		और
		कृत्स्नम्	=सम्पूर्ण	**च**	=भी
मम	=मेरे	**जगत्**	=जगत्‌को	**यत्**	=जो कुछ
इह	=इस	**अद्य**	=अभी	**द्रष्टुम्**	=देखना
देहे	=शरीरके	**पश्य**	=देख ले।	**इच्छसि**	=चाहता है, (वह भी देख ले)
एकस्थम्	=एक देशमें	**अन्यत्**	=इसके सिवाय (तू)		

विशेष भाव—भगवान् अपने शरीरके एक अंशमें सम्पूर्ण जगत् देखनेकी आज्ञा देते हैं। इससे सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण समग्र हैं और उनके एक अंशमें सम्पूर्ण संसार है। ***'रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड'*** (मानस, बाल० २०१)—यह भगवान् प्रत्यक्ष दिखा रहे हैं! जब सम्पूर्ण संसार भगवान्‌के किसी एक अंशमें है, तो फिर भगवान्‌के सिवाय क्या बाकी रहा? सब कुछ भगवान् ही हुए! इसलिये भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि तू जो कुछ भी देखना चाहता है, वह सब तू मेरे विराट्‌रूपमें देख सकता है। अर्जुन युद्धका परिणाम देखना चाहते थे, जिसको उन्होंने विराट्‌रूपमें ही देख लिया (गीता ११। २६-२७)।

~~~
~~~

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥ ८॥

तु	= परन्तु	**एव**	= ही	**ददामि**	= देता हूँ, (जिससे तू)
अनेन	= (तू) इस	**न**	= नहीं	**मे**	= मेरी
स्वचक्षुषा	= अपनी आँख-(चर्मचक्षु-) से	**शक्यसे**	= सकता,	**ऐश्वरम्**	= ईश्वरीय
माम्	= मुझे	**ते**	= (इसलिये मैं) तुझे	**योगम्**	= सामर्थ्यको
द्रष्टुम्	= देख	**दिव्यम्**	= दिव्य	**पश्य**	= देख।
		चक्षुः	= चक्षु		

विशेष भाव—'पश्य' क्रियाके दो अर्थ होते हैं—जानना और देखना। नवें अध्यायके पाँचवें श्लोकमें **'पश्य मे योगमैश्वरम्'** पदोंसे भगवान्‌को जाननेकी बात आयी है और यहाँ **'पश्य मे योगमैश्वरम्'** पदोंसे भगवान्‌के विराट्‌रूपको देखनेकी बात आयी है। तात्पर्य है कि जो जाननेमें आता है, वह भी भगवान् है और जो देखनेमें आता है, वह भी भगवान् है। भगवान्‌के सिवाय कुछ भी नहीं है। इस ग्यारहवें अध्यायमें भगवान्‌के अलौकिक रूपको देखनेकी विलक्षणता है, विवेचनकी विलक्षणता नहीं है। इसलिये गीताके अन्तमें भी संजयने एक तो 'संवाद' की विलक्षणता कही है और एक 'रूप' की विलक्षणता कही है (१८। ७६-७७)।

भगवान्‌का विराट्‌रूप अलौकिक था, इसलिये उसको देखनेके लिये भगवान्‌ने अर्जुनको अलौकिक चक्षु दिये।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्॥ ९॥

संजय बोले—

राजन्	= हे राजन्!	**महायोगेश्वरः**	= महायोगेश्वर	**परमम्**	= परम
एवम्	= ऐसा	**हरिः**	= भगवान् श्रीकृष्णने	**ऐश्वरम्**	= ऐश्वर
उक्त्वा	= कहकर	**पार्थाय**	= अर्जुनको	**रूपम्**	= विराट्‌रूप
ततः	= फिर			**दर्शयामास**	= दिखाया।

विशेष भाव—भगवान्‌को 'महायोगेश्वर' कहनेका तात्पर्य है कि भगवान् सम्पूर्ण योगोंके ईश्वर हैं। ऐसा कोई भी योग नहीं है, जिसके ईश्वर (मालिक) भगवान् न हों अर्थात् सब योग भगवान्‌के ही अन्तर्गत हैं।

अर्जुनने तो भगवान्‌को 'योगेश्वर' कहा था (११। ४), पर संजय भगवान्‌को 'महायोगेश्वर' कहते हैं। कारण कि संजय भगवान्‌को पहलेसे ही अर्जुनसे ज्यादा जानते थे। संजयसे भी ज्यादा वेदव्यासजी भगवान्‌को जानते थे। वेदव्यासजीकी कृपासे ही संजयने भगवान् और अर्जुनका संवाद सुना—**'व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्'** (गीता १८। ७५)। वेदव्यासजीसे भी ज्यादा भगवान्‌को स्वयं भगवान् ही जानते हैं (गीता १०। २, १५)।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्॥ १०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्॥ ११॥

अनेकवक्त्रनयनम्	=	जिनके अनेक मुख और नेत्र हैं,
अनेकाद्भुतदर्शनम्	=	अनेक तरहके अद्भुत दर्शन हैं,
अनेकदिव्याभरणम्	=	अनेक अलौकिक आभूषण हैं,
दिव्यानेकोद्यतायुधम्	=	हाथोंमें उठाये हुए अनेक दिव्य आयुध हैं
दिव्यमाल्याम्बरधरम्	=	(तथा) जिनके गलेमें दिव्य मालाएँ हैं, जो अलौकिक वस्त्र पहने हुए हैं,
दिव्यगन्धानुलेपनम्	=	जिनके ललाट तथा शरीरपर दिव्य चन्दन, कुंकुम आदि लगा हुआ है,
सर्वाश्चर्यमयम्	=	ऐसे सम्पूर्ण आश्चर्यमय,
अनन्तम्	=	अनन्त रूपोंवाले (तथा)
विश्वतोमुखम्	=	सब तरफ मुखोंवाले
देवम्	=	देव-(अपने दिव्य स्वरूप-) को (भगवान्‌ने दिखाया)।

विशेष भाव—दूसरे अध्यायमें तो भगवान्‌के अंश जीवका सब कुछ आश्चर्यमय बताया गया है*, यहाँ भगवान्‌का सब कुछ आश्चर्यमय बताते हैं। भगवान्‌को ज्यों देखें, त्यों-ही विलक्षणता दीखती चली जाती है। भगवान्‌की विलक्षणता अनन्त है।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

दिवि	=(अगर) आकाशमें	**सा**	=उन सबका	**भासः**	=प्रकाशके
युगपत्	=एक साथ	**भाः**	=प्रकाश (मिलकर)	**सदृशी**	=समान
सूर्यसहस्रस्य	=हजारों सूर्योंका	**तस्य**	=उस	**यदि**	=शायद ही
उत्थिता	=उदय	**महात्मनः**	=महात्मा-(विराट्‌रूप परमात्मा-) के	**स्यात्**	=हो अर्थात् नहीं हो सकता।
भवेत्	=हो जाय, (तो भी)				

विशेष भाव—हजारों सूर्योंका प्रकाश मिलकर भी भगवान्‌के प्रकाशकी बराबरी नहीं कर सकता; क्योंकि सूर्यमें जो तेज है, वह भी भगवान्‌से ही आया है†। अगर हजारों सूर्योंका प्रकाश हो तो भी है तो भौतिक ही, जबकि भगवान्‌का प्रकाश भौतिक नहीं है, प्रत्युत दिव्य है।

---

* **आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।**
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥
(गीता २। २९)

'कोई इस शरीरीको आश्चर्यकी तरह देखता है और वैसे ही दूसरा कोई इसका आश्चर्यकी तरह वर्णन करता है तथा अन्य कोई इसको आश्चर्यकी तरह सुनता है; और इसको सुनकर भी कोई नहीं जानता अर्थात् यह दुर्विज्ञेय है।'

† **यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।**
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥
(गीता १५। १२)

'सूर्यमें आया हुआ जो तेज सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करता है और जो तेज चन्द्रमामें है तथा जो तेज अग्निमें है, उस तेजको मेरा ही जान।'

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा॥ १३॥

तदा	= उस समय	**तत्र**	= उस	**प्रविभक्तम्**	= विभागोंमें विभक्त
पाण्डवः	= अर्जुनने	**शरीरे**	= शरीरमें	**कृत्स्नम्**	= सम्पूर्ण
देवदेवस्य	= देवोंके देव भगवान्‌के	**एकस्थम्**	= एक जगह स्थित	**जगत्**	= जगत्‌को
		अनेकधा	= अनेक प्रकारके	**अपश्यत्**	= देखा।

विशेष भाव—अर्जुनने भगवान्‌के शरीरमें एक जगह स्थित जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज, स्वेदज; स्थावर-जंगम; नभचर-जलचर-थलचर; चौरासी लाख योनियाँ; चौदह भुवन आदि अनेक विभागोंमें विभक्त जगत्‌को देखा। जगत् भले ही अनन्त हो, पर है वह भगवान्‌के एक अंशमें ही (गीता १०। ४२)! अर्जुन भगवान्‌के शरीरमें जहाँ भी दृष्टि डालते हैं, वहीं उनको अनन्त जगत् दीखता है!

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत॥ १४॥

ततः	= भगवान्‌के विश्व-रूपको देखकर	**विस्मयाविष्टः**	= बहुत चकित हुए (और)	**कृताञ्जलिः**	= (वे) हाथ जोड़कर
				देवम्	= विश्वरूप देवको
		हृष्टरोमाः	= आश्चर्यके कारण उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया।	**शिरसा**	= मस्तकसे
सः	= वे			**प्रणम्य**	= प्रणाम करके
धनञ्जयः	= अर्जुन			**अभाषत**	= बोले।

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥ १५॥

अर्जुन बोले—

देव	= हे देव! (मैं)	**भूतविशेष-सङ्घान्**	= प्राणियोंके विशेष-विशेष समुदायोंको	**ईशम्**	= शंकरजीको,
				सर्वान्	= सम्पूर्ण
तव	= आपके			**ऋषीन्**	= ऋषियोंको
देहे	= शरीरमें	**च**	= और	**च**	= और
सर्वान्	= सम्पूर्ण	**कमलासनस्थम्**	= कमलासन-पर बैठे हुए	**दिव्यान्**	= दिव्य
देवान्	= देवताओंको			**उरगान्**	= सर्पोंको
तथा	= तथा	**ब्रह्माणम्**	= ब्रह्माजीको,	**पश्यामि**	= देख रहा हूँ।

विशेष भाव—अर्जुन भगवान्‌के विराट्‌रूपमें देवता, प्राणी, ब्रह्माजी, विष्णु, शंकरजी, ऋषि, नाग—इन सबका समूह देखते हैं। तात्पर्य है कि अर्जुन मृत्युलोकमें बैठे हुए ही देवलोक, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ, कैलास, नागलोक

आदि लोक देख रहे हैं। अतः जो कुछ भी कहने-सुननेमें आता है, वह सब-का-सब भगवान्‌के एक अंशमें स्थित है। भगवान् साकार हों या निराकार हों, बड़े-से-बड़े हों या छोटे-से-छोटे हों, उनका अनन्तपना नहीं मिटता। सम्पूर्ण सृष्टि उनसे ही उत्पन्न होती है, उनमें ही रहती है और उनमें ही लीन हो जाती है, पर वे वैसे-के-वैसे ही रहते हैं!

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं-
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं-
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥ १६॥

विश्वरूप	=हे विश्वरूप!	**सर्वतः**	=सब ओरसे	**न**	=न
विश्वेश्वर	=हे विश्वेश्वर!	**अनन्तरूपम्**	=अनन्त रूपोंवाला	**मध्यम्**	=मध्यको
त्वाम्	=आपको (मैं)	**पश्यामि**	=देख रहा हूँ।	**पुनः**	=और
अनेकबाहूदर-	=अनेक हाथों, पेटों,	**तव**	=(मैं) आपके	**न**	=न
वक्त्रनेत्रम्	मुखों और नेत्रोंवाला	**न**	=न	**अन्तम्**	=अन्तको ही
	(तथा)	**आदिम्**	=आदिको,	**पश्यामि**	=देख रहा हूँ।

विशेष भाव—यहाँ भगवान्‌के विराट्‌रूपकी अनन्तताका वर्णन हुआ है। भगवान्‌के एक अंशमें भी अनन्तता है। जैसे स्याहीमें किस जगह कौन-सी लिपि नहीं है? सोनेमें किस जगह कौन-सा गहना नहीं है? ऐसे ही भगवान्‌में क्या नहीं है? अर्थात् भगवान्‌में स्वाभाविक ही सब कुछ है।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्॥ १७॥

त्वाम्	=(मैं) आपको	**तेजोराशिम्**	=तेजकी राशि,	**दुर्निरीक्ष्यम्**	=नेत्रोंके द्वारा कठिनतासे देखे जानेयोग्य
किरीटिनम्	=किरीट (मुकुट),	**सर्वतः**	=सब ओर	**च**	=और
गदिनम्	=गदा,	**दीप्तिमन्तम्**	=प्रकाशवाले,	**समन्तात्**	=सब तरफसे
चक्रिणम्	=चक्र (तथा शंख और पद्म) धारण किये हुए	**दीप्तानलार्कद्युतिम्**	=देदीप्यमान अग्नि तथा सूर्यके समान कान्तिवाले,	**अप्रमेयम्**	=अप्रमेयस्वरूप (देख रहा हूँ)।
पश्यामि	=देख रहा हूँ। (आपको)				

विशेष भाव—'अप्रमेयम्'—परमात्माके सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार सभी रूप अप्रमेय (अपरिमित) हैं और उनका अंश जीवात्मा भी अप्रमेय है—**'अनाशिनोऽप्रमेयस्य'** (गीता २। १८)। वे परमात्मा ज्ञानका विषय नहीं हैं; क्योंकि वे ज्ञानके भी ज्ञाता हैं—**'वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्'** (गीता १५। १५)।

'दुर्निरीक्ष्यम्'—भगवान्‌के द्वारा प्रदत्त दिव्यदृष्टिसे भी अर्जुन भगवान्‌के विराट्‌रूपको देखनेमें पूरे समर्थ नहीं

हो रहे हैं! इससे सिद्ध होता है कि भगवान्‌की दी हुई शक्तिसे भी भगवान्‌को पूरा नहीं जान सकते। भगवान् भी अपनेको पूरा नहीं जानते, यदि जान जायँ तो वे अनन्त कैसे रहेंगे?

~~~~

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं-
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे॥ १८॥

त्वम्	= आप (ही)	**विश्वस्य**	= सम्पूर्ण विश्वके	**अव्ययः**	= अविनाशी
वेदितव्यम्	= जाननेयोग्य	**परम्**	= परम	**सनातनः**	= सनातन
परमम्	= परम	**निधानम्**	= आश्रय हैं,	**पुरुषः**	= पुरुष हैं (—ऐसा)
अक्षरम्	= अक्षर (अक्षरब्रह्म) हैं,	**त्वम्**	= आप (ही)		
त्वम्	= आप (ही)	**शाश्वतधर्मगोप्ता**	= सनातनधर्मके रक्षक हैं	**मे**	= मैं
अस्य	= इस	**त्वम्**	= (और) आप (ही)	**मतः**	= मानता हूँ।

विशेष भाव—यहाँ **'त्वमक्षरं परमं वेदितव्यम्'** पदोंसे निर्गुण-निराकारकी बात आयी है, **'त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्'** पदोंसे सगुण-निराकारकी बात आयी है और **'त्वं शाश्वतधर्मगोप्ता'** पदोंसे सगुण-साकारकी बात आयी है। तात्पर्य है कि निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण-साकार—ये सब मिलकर भगवान्‌का समग्ररूप है, जिसको जाननेपर फिर कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता (गीता ७। २); क्योंकि उसके सिवाय दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं।

~~~~

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं-
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥ १९॥

त्वाम्	= आपको (मैं)	**अनन्तबाहुम्**	= अनन्त भुजाओंवाले,		वाले (और)
अनादिमध्यान्तम्	= आदि, मध्य और अन्तसे रहित,	**शशिसूर्यनेत्रम्**	= चन्द्र और सूर्य-रूप नेत्रोंवाले,	**स्वतेजसा**	= अपने तेजसे
				इदम्	= इस
				विश्वम्	= संसारको
अनन्तवीर्यम्	= अनन्त प्रभाव-शाली,	**दीप्तहुताशवक्त्रम्**	= प्रज्वलित अग्निरूप मुखों-	**तपन्तम्**	= तपाते हुए
				पश्यामि	= देख रहा हूँ।

विशेष भाव—इस श्लोकका तात्पर्य है कि भगवान् सब तरहसे अनन्त हैं। उनके तेजसे तपनेवाला विश्व भगवान्‌से अलग नहीं है। अतः तपानेवाला और तपनेवाला—दोनों ही भगवान्‌का स्वरूप हैं।

~~~~
~~~~

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं-
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्॥ २०॥

महात्मन्	= हे महात्मन्!	**दिशः**	= दिशाएँ	**अद्भुतम्**	= अद्भुत (और)
इदम्	= यह	**एकेन**	= एक	**उग्रम्**	= उग्र
द्यावापृथिव्योः	= स्वर्ग और पृथ्वीके	**त्वया**	= आपसे	**रूपम्**	= रूपको
		हि	= ही	**दृष्ट्वा**	= देखकर
अन्तरम्	= बीचका अन्तराल	**व्याप्तम्**	= परिपूर्ण हैं।	**लोकत्रयम्**	= तीनों लोक
च	= और	**तव**	= आपके	**प्रव्यथितम्**	= व्यथित (व्याकुल) हो रहे हैं।
सर्वाः	= सम्पूर्ण	**इदम्**	= इस		

विशेष भाव—इस श्लोकमें आये '**त्वयैकेन**' पदका तात्पर्य है कि असंख्य रूपोंमें एक आप ही हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**'। आपके अनेक रूपोंकी कोई गणना नहीं कर सकता, पर उनमें हैं आप एक ही।

भगवान्‌में अनेक तरहकी अद्भुतता है। वे देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, रूप, ज्ञान, योग आदि सब दृष्टियोंसे अनन्त हैं। जिसको हमने देखा नहीं, सुना नहीं, जाना नहीं, समझा नहीं और जो हमारी कल्पनामें आया ही नहीं, वह सब विराट्‌रूपके अन्तर्गत है।

~~~

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः॥ २१॥

अमी	= वे	**प्राञ्जलयः**	= हाथ जोड़े हुए (आपके नामों और गुणोंका)	**स्वस्ति**	= 'कल्याण हो! मंगल हो!'
हि	= ही			**इति**	= ऐसा
सुरसङ्घाः	= देवताओंके समुदाय			**उक्त्वा**	= कहकर
त्वाम्	= आपमें	**गृणन्ति**	= कीर्तन कर रहे हैं।	**पुष्कलाभिः**	= उत्तम-उत्तम
विशन्ति	= प्रविष्ट हो रहे हैं।	**महर्षि-**		**स्तुतिभिः**	= स्तोत्रोंके द्वारा
केचित्	= (उनमेंसे) कई तो	**सिद्धसङ्घाः**	= महर्षियों और सिद्धोंके समुदाय	**त्वाम्**	= आपकी
भीताः	= भयभीत होकर			**स्तुवन्ति**	= स्तुति कर रहे हैं।

विशेष भाव—देवता, महर्षि, सिद्ध आदि सब भगवान्‌के ही विराट्‌रूपके अंग हैं। अतः प्रविष्ट होनेवाले, भयभीत होनेवाले, भगवान्‌के नामों और गुणोंका कीर्तन करनेवाले तथा स्तुति करनेवाले भी भगवान् हैं और जिनमें प्रविष्ट हो रहे हैं, जिनसे भयभीत हो रहे हैं, जिनके नामों और गुणोंका कीर्तन कर रहे हैं और जिनकी स्तुति कर रहे हैं, वे भी भगवान् हैं। यह भगवान्‌के सगुण रूपकी विलक्षणता है!

~~~

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या-
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा-
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे॥ २२॥

ये	=जो	**च**	=तथा	**गन्धर्वयक्षासुर-**	
रुद्रादित्याः	=ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य,	**मरुतः**	=उन्चास मरुद्गण	**सिद्धसङ्घाः**	=गन्धर्व, यक्ष, असुर और सिद्धोंके समुदाय हैं,
वसवः	=आठ वसु,	**च**	=और		
साध्याः	=बारह साध्यगण,	**ऊष्मपाः**	=गरम-गरम भोजन करनेवाले (सात पितृगण)	**सर्वे, एव**	=(वे) सभी
विश्वे	=दस विश्वेदेव			**विस्मिताः**	=चकित होकर
च	=और			**त्वाम्**	=आपको
अश्विनौ	=दो अश्विनीकुमार,	**च**	=तथा	**वीक्षन्ते**	=देख रहे हैं।

विशेष भाव—रुद्र, आदित्य, वसु, साध्यगण, विश्वेदेव आदि सब-के-सब एक भगवान्‌के समग्ररूपके ही अंग हैं। अतः देखनेवाले और दीखनेवाले सभी एक परमात्मा ही हैं।

~~~~

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं-
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं-
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्॥ २३॥

महाबाहो	=हे महाबाहो!		चरणोंवाले,	**दृष्ट्वा**	=देखकर
ते	=आपके	**बहूदरम्**	=बहुत उदरोंवाले (और)		
बहुवक्त्र-नेत्रम्	=बहुत मुखों और नेत्रोंवाले,	**बहुदंष्ट्रा-करालम्**	=बहुत विकराल दाढ़ोंवाले	**लोकाः**	=सब प्राणी
				प्रव्यथिताः	=व्यथित हो रहे हैं
				तथा	=तथा
बहुबाहूरु-पादम्	=बहुत भुजाओं, जंघाओं और	**महत्**	=महान्	**अहम्**	=मैं भी (व्यथित हो रहा हूँ)।
		रूपम्	=रूपको		

विशेष भाव—दीखनेवाले और देखनेवाले, व्यथित करनेवाले और व्यथित होनेवाले सब प्राणी और स्वयं अर्जुन भी भगवान्‌के विराट्‌रूपके अन्तर्गत ही हैं।

~~~~

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं-
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो॥ २४॥

हि	= क्योंकि	**व्यात्ताननम्**	= आपका मुख फैला हुआ है,	**प्रव्यथितान्तरात्मा**	= भयभीत अन्तःकरणवाला (मैं)
विष्णो	= हे विष्णो! (आपके)	**दीप्तविशाल-**		**धृतिम्**	= धैर्य
दीप्तम्	= देदीप्यमान	**नेत्रम्**	= आपके नेत्र प्रदीप्त और विशाल हैं।	**च**	= और
अनेकवर्णम्	= अनेक वर्ण हैं,	**त्वाम्**	= (ऐसे) आपको	**शमम्**	= शान्तिको
नभःस्पृशम्	= आप आकाशको स्पर्श कर रहे हैं अर्थात् सब तरफसे बहुत बड़े हैं,	**दृष्ट्वा**	= देखकर	**न, विन्दामि**	= प्राप्त नहीं हो रहा हूँ।

विशेष भाव—यहाँ आया **'नभःस्पृशम्'** पद विराट्‌रूपकी अनन्तताका द्योतक है। अर्जुनकी दृष्टि जहाँतक जाती है, वहाँतक उनको विराट्‌रूप ही दीखता है—**'सा काष्ठा सा परा गतिः'** (कठ० १। ३। ११) अर्थात् वह परमात्मा सबकी परम अवधि और परम गति है।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥ २५॥

ते	= आपके	**मुखानि**	= मुखोंको	**शर्म**	= शान्ति
कालानल-सन्निभानि	= प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित	**दृष्ट्वा**	= देखकर (मुझे)	**एव**	= ही
च	= और	**न**	= न तो	**लभे**	= मिल रही है। (इसलिये)
दंष्ट्राकरालानि	= दाढ़ोंके कारण विकराल (भयानक)	**दिशः**	= दिशाओंका	**देवेश**	= हे देवेश!
		जाने	= ज्ञान हो रहा है	**जगन्निवास**	= हे जगन्निवास!
		च	= और	**प्रसीद**	= (आप) प्रसन्न होइये।
		न	= न		

विशेष भाव—भगवान् तो प्रसन्न होकर ही अर्जुनको अपना विराट्‌रूप दिखा रहे हैं (गीता ११। ४७), पर उनके रूपकी उग्रताको देखकर अर्जुनको यह वहम हो रहा है कि भगवान् अप्रसन्न हैं। इसलिये वे भगवान्‌से प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करते हैं।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः॥ २६॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।

केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७ ॥

अस्मदीयैः	=हमारे पक्षके
योधमुख्यैः	=मुख्य-मुख्य योद्धाओंके
सह	=सहित
भीष्मः	=भीष्म,
द्रोणः	=द्रोण
तथा	=और
असौ	=वह
सूतपुत्रः	=कर्ण
अपि	=भी
त्वाम्	=आपमें
विशन्ति	=प्रविष्ट हो रहे हैं।
अवनिपाल-	
सङ्घैः	=राजाओंके समुदायोंके
सह	=सहित
धृतराष्ट्रस्य	=धृतराष्ट्रके
अमी	=वे
एव	=ही
सर्वे	=सब-के-सब
पुत्राः	=पुत्र
ते	=आपके
दंष्ट्राकरालानि	=विकराल दाढ़ोंके कारण
भयानकानि	=भयंकर
वक्त्राणि	=मुखोंमें
त्वरमाणाः	=बड़ी तेजीसे
विशन्ति	=प्रविष्ट हो रहे हैं।
केचित्	=(उनमेंसे) कई-एक तो
चूर्णितैः	=चूर्ण हुए
उत्तमाङ्गैः	=सिरोंसहित
दशनान्तरेषु	=(आपके) दाँतोंके बीचमें
विलग्नाः	=फँसे हुए
सन्दृश्यन्ते	=दीख रहे हैं।

विशेष भाव—अर्जुन भगवान्‌के विराट्‌रूपमें आसन्न भविष्यको देख रहे हैं। कालातीत होनेसे भगवान्‌में भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों काल वर्तमान ही हैं (गीता ७। २६)।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा-
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥ २८ ॥

यथा	=जैसे
नदीनाम्	=नदियोंके
बहवः	=बहुत-से
अम्बुवेगाः	=जलके प्रवाह
एव	=(स्वाभाविक) ही
समुद्रम्	=समुद्रके
अभिमुखाः	=सम्मुख
द्रवन्ति	=दौड़ते हैं,
तथा	=ऐसे ही
अमी	=वे
नरलोकवीराः	=संसारके महान् शूरवीर
तव	=आपके
अभिविज्वलन्ति	=सब तरफसे देदीप्यमान
वक्त्राणि	=मुखोंमें
विशन्ति	=प्रवेश कर रहे हैं।

~~~~

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा-
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

यथा	=जैसे
पतङ्गाः	=पतंगे (मोहवश)
नाशाय	=(अपना) नाश करनेके लिये
समृद्धवेगाः	=बड़े वेगसे दौड़ते हुए
प्रदीप्तम्	=प्रज्वलित
ज्वलनम्	=अग्निमें
विशन्ति	=प्रविष्ट होते हैं,
~~~~

तथा	=ऐसे	**नाशाय**	=(अपना) नाश करनेके लिये	**तव**	=आपके
एव	=ही			**वक्त्राणि**	=मुखोंमें
लोकाः	=ये सब लोग	**समृद्धवेगाः**	=बड़े वेगसे दौड़ते हुए	**विशन्ति**	=प्रविष्ट हो रहे हैं।
अपि	=भी (मोहवश)				

विशेष भाव—पिछले श्लोकमें नदियोंका और इस श्लोकमें पतंगोंका दृष्टान्त दिया गया है। पतंगे तो मोहवश लेनेकी इच्छासे खुद अग्निमें जाते हैं, पर नदियाँ अपने-आपको देनेके लिये समुद्रमें जाती हैं। अतः जो मनुष्य 'लेने' की इच्छा रखते हैं, वे पतंगोंके समान हैं और जो मनुष्य 'देने' की इच्छा रखते हैं, वे नदियोंके समान हैं। लेनेका भाव जड़ता है और देनेका भाव चेतनता है। लेनेकी भावनासे अशुभ कर्म और देनेकी भावनासे शुभ कर्म होते हैं। लेनेकी इच्छावालोंके लिये स्वर्ग है और देनेकी इच्छावालोंके लिये मोक्ष है। कारण कि लेनेका भाव बाँधनेवाला और देनेका भाव मुक्त करनेवाला होता है।

~~~~

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं-
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३० ॥

ज्वलद्भिः	=(आप अपने) प्रज्वलित	**समन्तात्**	=सब ओरसे	**तेजोभिः**	=अपने तेजसे
		लेलिह्यसे	=बार-बार चाट रहे हैं;	**समग्रम्**	=सम्पूर्ण
वदनैः	=मुखोंद्वारा			**जगत्**	=जगत्को
समग्रान्	=सम्पूर्ण	**विष्णो**	=(और) हे विष्णो!	**आपूर्य**	=परिपूर्ण करके
लोकान्	=लोकोंका	**तव**	=आपका		
ग्रसमानः	=ग्रसन करते हुए (उन्हें)	**उग्राः**	=उग्र	**प्रतपन्ति**	=(सबको) तपा रहा है।
		भासः	=प्रकाश		

विशेष भाव—यहाँ **'लोकान्समग्रान्'** (लोकमात्र) तथा **'जगत्समग्रम्'** (जड़-चेतन, स्थावर-जंगमरूप जगन्मात्र) कहनेका तात्पर्य है कि यह सब कुछ भगवान्के ही समग्ररूपके अन्तर्गत है।

गीतामें भगवान्को भी समग्र कहा है—**'असंशयं समग्रं माम्'** (७। १), कर्मोंको भी समग्र कहा है—**'यज्ञायाचरतः कर्म समग्रम्'** (४। २३) और संसारको भी समग्र कहा है (११। ३०)। इसका तात्पर्य है कि सब भगवान्के ही रूप हैं।

~~~~

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो-
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं-
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्॥ ३१ ॥

मे	=मुझे यह	**भवान्**	=आप	**ते**	=आपको
आख्याहि	=बताइये कि	**कः**	=कौन हैं?	**नमः**	=नमस्कार
उग्ररूपः	=उग्र रूपवाले	**देववर**	=हे देवताओंमें श्रेष्ठ!	**अस्तु**	=हो।

प्रसीद	=(आप) प्रसन्न होइये।	**विज्ञातुम्**	=तत्त्वसे जानना	**तव**	=आपकी
आद्यम्	=आदिरूप	**इच्छामि**	=चाहता हूँ;	**प्रवृत्तिम्**	=प्रवृत्तिको
भवन्तम्	=आपको (मैं)	**हि**	=क्योंकि (मैं)	**न, प्रजानामि**	=भलीभाँति नहीं जानता।

विशेष भाव—भगवान्‌के ऐश्वर्ययुक्त उग्ररूपको देखकर अर्जुन इतने घबरा जाते हैं कि अपने ही सखा श्रीकृष्णसे पूछ बैठते हैं कि आप कौन हैं!

~~~~

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो-
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥ ३२॥
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥ ३३॥

श्रीभगवान् बोले—

लोकक्षयकृत्	=(मैं) सम्पूर्ण लोकोंका नाश करनेवाला	**सर्वे**	=(वे) सब	**राज्यम्**	=राज्यको
प्रवृद्धः	=बढ़ा हुआ	**त्वाम्**	=तुम्हारे	**भुङ्क्ष्व**	=भोगो।
कालः	=काल	**ऋते**	=(युद्ध किये) बिना	**एते, एव**	=ये सभी
अस्मि	=हूँ (और)	**अपि**	=भी	**मया**	=मेरे द्वारा
इह	=इस समय (मैं)	**न**	=नहीं	**पूर्वम्**	=पहलेसे
लोकान्	=(इन सब) लोगोंका	**भविष्यन्ति**	=रहेंगे।	**एव**	=ही
समाहर्तुम्	=संहार करनेके लिये	**तस्मात्**	=इसलिये	**निहताः**	=मारे हुए हैं।
प्रवृत्तः	=(यहाँ) आया हूँ।	**त्वम्**	=तुम (युद्धके लिये)	**सव्यसाचिन्**	=हे सव्यसाचिन् अर्थात् दोनों हाथोंसे बाण चलानेवाले अर्जुन! (तुम इनको मारनेमें)
प्रत्यनीकेषु	=(तुम्हारे) प्रतिपक्षमें	**उत्तिष्ठ**	=खड़े हो जाओ (और)	**निमित्तमात्रम्**	=निमित्तमात्र
ये	=जो	**यशः**	=यशको	**भव**	=बन जाओ।
योधाः	=योद्धालोग	**लभस्व**	=प्राप्त करो (तथा)		
अवस्थिताः	=खड़े हैं,	**शत्रून्**	=शत्रुओंको		
		जित्वा	=जीतकर		
		समृद्धम्	=धन-धान्यसे सम्पन्न		

विशेष भाव—यहाँ कालरूपसे सबका संहार करना भगवान्‌की लीला है। इस लीलाको दिखाकर भगवान् अर्जुनसे मानो यह कहना चाहते हैं कि अगर तू युद्ध नहीं करेगा, तो भी तुम्हारे प्रतिपक्षी योद्धाओंका विनाश अवश्यम्भावी है।
~~~~

'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्'—निमित्तमात्र बननेका तात्पर्य यह नहीं है कि नाममात्रके लिये कर्म करो, प्रत्युत इसका तात्पर्य है कि अपनी पूरी-की-पूरी शक्ति लगाओ, पर अपनेको कारण मत मानो अर्थात् अपने उद्योगमें कमी भी मत रखो और अपनेमें अभिमान भी मत करो। भगवान्‌ने जो कुछ बल, विद्या, योग्यता आदि दी है, वह सब लगानेके लिये दी है; परन्तु अपना पूरा बल आदि लगाकर हम उनको प्राप्त नहीं कर सकते। प्राप्ति तो उनकी कृपासे ही होगी।

भगवान्‌ने अपनी ओरसे हमारेपर कृपा करनेमें कोई कमी नहीं रखी है। जैसे बछड़ा एक थनसे ही दूध पीता है, पर भगवान्‌ने गायको चार थन दिये हैं! ऐसे ही भगवान् चारों तरफसे हमारेपर कृपा कर रहे हैं! हमें तो निमित्तमात्र बनना है। अर्जुनके सामने तो युद्ध था, इसलिये भगवान् उनसे कहते हैं कि तुम निमित्तमात्र बनकर युद्ध करो, तुम्हारी विजय होगी। इसी तरह हमारे सामने संसार है; अतः हम भी निमित्तमात्र बनकर साधन करें तो संसारपर हमारी विजय हो जायगी।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा-
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्॥ ३४॥

द्रोणम्	= द्रोण	**तथा**	= तथा	**जहि**	= मारो।
च	= और	**अन्यान्,**		**मा, व्यथिष्ठाः**	= तुम व्यथा मत करो
भीष्मम्	= भीष्म	**अपि**	= अन्य सभी	**युध्यस्व**	= (और) युद्ध करो।
च	= तथा	**मया**	= मेरे द्वारा	**रणे**	= युद्धमें (तुम निःसन्देह)
जयद्रथम्	= जयद्रथ	**हतान्**	= मारे हुए		
च	= और	**योधवीरान्**	= शूरवीरोंको	**सपत्नान्**	= वैरियोंको
कर्णम्	= कर्ण	**त्वम्**	= तुम	**जेतासि**	= जीतोगे।

विशेष भाव—भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि ये सभी शूरवीर मेरे द्वारा पहलेसे ही मारे हुए हैं। इससे यह समझना चाहिये कि साधकके राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि भी पहलेसे ही मारे हुए हैं अर्थात् सत्तारहित हैं। इनको हमने ही सत्ता और महत्ता देकर अपनेमें स्वीकार किया है। वास्तवमें इनकी स्वतन्त्र सत्ता है ही नहीं—**'नासतो विद्यते भावः'** (गीता २। १६)।

सञ्जय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं-
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य॥ ३५॥

संजय बोले—

केशवस्य	= भगवान् केशवका	**वचनम्**	= वचन	**वेपमानः**	= (भयसे) काँपते हुए
एतत्	= यह	**श्रुत्वा**	= सुनकर	**किरीटी**	= किरीटधारी अर्जुन

कृताञ्जलिः	=हाथ जोड़कर
नमस्कृत्वा	=नमस्कार करके (और)
भीतभीतः	=भयभीत होते हुए
एव	=भी
भूयः	=फिर
प्रणम्य	=प्रणाम करके
सगद्गदम्	=गद्गद वाणीसे
कृष्णम्	=भगवान् कृष्णसे
आह	=बोले।

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥ ३६ ॥

अर्जुन बोले—

हृषीकेश	=हे अन्तर्यामी भगवन्!
तव	=आपके
प्रकीर्त्या	=(नाम, गुण, लीला-का) कीर्तन करनेसे
जगत्	=यह सम्पूर्ण जगत्
प्रहृष्यति	=हर्षित हो रहा है
च	=और
अनुरज्यते	=अनुराग (प्रेम) को प्राप्त हो रहा है।
भीतानि	=(आपके नाम, गुण आदिके कीर्तनसे) भयभीत होकर
रक्षांसि	=राक्षसलोग
दिशः	=दसों दिशाओंमें
द्रवन्ति	=भागते हुए जा रहे हैं
च	=और
सर्वे	=सम्पूर्ण
सिद्धसङ्घाः	=सिद्धगण
नमस्यन्ति	=आपको नमस्कार कर रहे हैं।
स्थाने	=यह सब होना उचित ही है।

विशेष भाव—यहाँ '**स्थाने**' पद पीछे और आगे—दोनों जगह आये श्लोकोंके लिये समझना चाहिये। भगवान्ने बत्तीसवें, तैंतीसवें और चौंतीसवें श्लोकोंमें जो बात कही थी और जो बात इस श्लोकमें कही है, उसके लिये अर्जुन कहते हैं कि 'प्रतिपक्षके सभी योद्धा मेरे द्वारा मारे हुए हैं, तू केवल निमित्त बन जा' आदि जो कुछ आपने कहा है, वह आपका कथन उचित ही है। 'आपके नाम, गुण आदिका कीर्तन करनेसे जगत् हर्षित हो रहा है और राक्षसलोग भयभीत होकर भाग रहे हैं' आदि जो हो रहा है, वह भी ठीक ही हो रहा है। आपके द्वारा ही यह सब लीला हो रही है, मेरे द्वारा नहीं।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

महात्मन्	=हे महात्मन्!
गरीयसे	=गुरुओंके भी गुरु
च	=और
ब्रह्मणः	=ब्रह्माके
अपि	=भी
आदिकर्त्रे	=आदिकर्ता
ते	=आपके लिये (वे सिद्धगण)
कस्मात्,	
न, नमेरन्	=नमस्कार क्यों नहीं करें?
अनन्त	=(क्योंकि) हे अनन्त!
देवेश	=हे देवेश!
जगन्निवास	=हे जगन्निवास!
त्वम्	=आप
अक्षरम्	=अक्षरस्वरूप हैं;

सत्	=(आप) सत् भी हैं,	**तत्परम्**	=उनसे (सत्-असत्से) पर भी	**यत्**	=जो कुछ है, (वह भी आप ही हैं।)
असत्	=असत् भी हैं (और)				

विशेष भाव—नवें अध्यायमें आये **'सदसच्चाहम्'** (९। १९) पदसे और यहाँ आये **'सदसत्तत्परं यत्'** पदोंसे परमात्माके सगुण रूपकी अनन्तता, समग्रता सिद्ध होती है।

सत् और असत्—दोनों सापेक्ष होनेसे लौकिक हैं और जो इनसे परे है, वह निरपेक्ष होनेसे अलौकिक है। लौकिक और अलौकिक—दोनों ही समग्र परमात्माके रूप हैं। परमात्माकी परा और अपरा प्रकृति सत्-असत्से परे नहीं है, पर परमात्मा सत्-असत्से परे भी हैं—**'मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय'** (गीता ७। ७)।

सगुण (समग्र) के अन्तर्गत तो निर्गुण आ सकता है, पर निर्गुणके अन्तर्गत सगुण नहीं आ सकता। कारण कि सगुणमें निर्गुणका निषेध नहीं है, जबकि निर्गुणमें गुणोंका निषेध है। अतः निर्गुण एकदेशीय होता है अर्थात् उसके अन्तर्गत सब कुछ नहीं आता। परन्तु सगुण (समग्र) के अन्तर्गत सब कुछ आ जाता है, कुछ भी बाकी नहीं रहता। इसलिये अर्जुन **'सदसत्तत्परं यत्'** पदोंसे मानो यह कहते हैं कि सत् भी आप हैं, असत् भी आप हैं और सत्-असत्के सिवाय जो भी हमारी कल्पनामें आ सकता है, वह भी आप ही हैं। ज्ञानकी दृष्टिसे जो न सत् कहा जा सकता है और न असत् कहा जा सकता है, वह अनिर्वचनीय तत्त्व भी आप ही हैं—**'न सत्तन्नासदुच्यते'** (गीता १३। १२)। तात्पर्य है कि आपके सिवाय न तो कोई हुआ है, न कोई है, न कोई होगा और न कोई हो ही सकता है अर्थात् केवल आप-ही-आप हैं।

~~~

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥ ३८॥

त्वम्	=आप (ही)	**विश्वस्य**	=संसारके	**परम्**	=परम
आदिदेवः	=आदिदेव	**परम्**	=परम	**धाम**	=धाम
च	=और	**निधानम्**	=आश्रय हैं।	**असि**	=हैं।
पुराणः	=पुराण	**वेत्ता**	=(आप ही) सबको जाननेवाले,	**अनन्तरूप**	=हे अनन्तरूप!
पुरुषः	=पुरुष हैं (तथा)			**त्वया**	=आपसे (ही)
त्वम्	=आप (ही)	**वेद्यम्**	=जाननेयोग्य	**विश्वम्**	=सम्पूर्ण संसार
अस्य	=इस	**च**	=और	**ततम्**	=व्याप्त है।

विशेष भाव—अर्जुन भगवान्‌की कही बातको ही कह रहे हैं—**'आदिदेवः'**—इसको भगवान्‌ने **'अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः'** (१०। २) पदोंसे कहा था। यद्यपि प्रकृति भी अनादि है—**'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि'** (१३। १९), तथापि अनादि होते हुए भी प्रकृति परमात्माके अधीन, आश्रित है। कारण कि प्रकृति परमात्माकी परिवर्तनशील शक्ति है, पर परमात्मा किसीकी शक्ति नहीं हैं, प्रत्युत शक्तिमान् हैं।

'पुराणः'—इसको भगवान्‌ने **'पुराणम्'** (८। ९) पदसे कहा था। भगवान्‌से पुराना कोई नहीं है; क्योंकि वे कालातीत हैं।

'परं निधानम्'—इसको भगवान्‌ने **'निधानम्'** (९। १८) पदसे कहा था। सृष्टि अनन्त है, पर वह भी भगवान्‌के एक देशमें रहती है।

'वेत्ता'—इसको भगवान्‌ने **'वेदाहं समतीतानि०'** (७। २६) आदि पदोंसे कहा था।

'वेद्यम्'—इसको भगवान्‌ने **'वेद्यम्'** (९। १७) पदसे कहा था।
~~~

'परं धाम'—इसको भगवान्‌ने **'यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'** (८। २१) पदोंसे कहा था।

'त्वया ततं विश्वम्'—इसको भगवान्‌ने **'येन सर्वमिदं ततम्'** (८। २२) और **'मया ततमिदं सर्वम्'** (९। ४) पदोंसे कहा था।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥ ३९॥

त्वम्	=आप ही	**प्रपितामहः**	=प्रपितामह (ब्रह्मा-जीके भी पिता) हैं।	**च**	=और
वायुः	=वायु,			**पुनः**	=फिर
यमः	=यमराज,			**अपि**	=भी
अग्निः	=अग्नि,	**ते**	=आपको	**ते**	=आपको
वरुणः	=वरुण,	**सहस्रकृत्वः**	=हजारों बार		
शशाङ्कः	=चन्द्रमा,	**नमः**	=नमस्कार	**भूयः**	=बार-बार
प्रजापतिः	=दक्ष आदि प्रजापति	**अस्तु**	=हो!	**नमः**	=नमस्कार हो!
च	=और	**नमः**	=नमस्कार हो!	**नमः**	=नमस्कार हो!

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं-
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥ ४०॥

सर्व	=हे सर्वस्वरूप!	**सर्वतः**	=सब ओरसे (दसों दिशाओंसे)	**त्वम्**	=आपने
ते	=आपको			**सर्वम्**	=सबको (एक देशमें)
पुरस्तात्	=आगेसे (भी)	**एव**	=ही		
नमः	=नमस्कार हो	**नमः**	=नमस्कार	**समाप्नोषि**	=समेट रखा है;
अथ	=और	**अस्तु**	=हो।	**ततः**	=अतः
पृष्ठतः	=पीछेसे (भी नमस्कार हो!)	**अनन्तवीर्य**	=हे अनन्तवीर्य!	**सर्वः**	=सब कुछ
		अमित-		**असि**	=(आप ही) हैं।
ते	=आपको	**विक्रमः**	=असीम पराक्रमवाले		

विशेष भाव—भगवान्‌के दिव्य विराट्‌रूपको देखकर अर्जुनने कहा कि आप अपने तेजसे संसारको संतप्त कर रहे हैं—**'स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्'** (११। १९) तो संतप्त करनेवाले और संतप्त होनेवाले—दोनों एक ही विराट्‌रूपके अंग हैं। भगवान्‌के उग्र रूपको देखकर तीनों लोक व्यथित (व्याकुल) हो रहे हैं—**'लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्'** (११। २०) तो व्यथित होनेवाली त्रिलोकी भी भगवान्‌के विराट्‌रूपका ही अंग है। भगवान्‌को देखकर देवता भयभीत होकर उनका गुणगान कर रहे हैं—**'केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति'** (११। २१) और राक्षसलोग भयभीत होकर दसों दिशाओंमें भाग रहे हैं—**'रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति'** (११। ३६) तो भयभीत होनेवाले

देवता और राक्षस भी भगवान्‌के विराट्‌रूपके ही अंग हैं। कारण कि ये देवता, राक्षस आदि कुरुक्षेत्रमें नहीं थे, प्रत्युत भगवान्‌के विराट्‌रूपमें ही अर्जुनको दीख रहे थे।

ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, रुद्र, आदित्य, वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, पितृगण, सर्प, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, असुर, ऋषि-महर्षि, सिद्धगण, वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, सूर्य आदि और इनके सिवाय भीष्म, द्रोण, कर्ण, जयद्रथ आदि समस्त राजालोग—ये सब-के-सब दिव्य विराट्‌रूपके ही अंग हैं। इतना ही नहीं, अर्जुन, संजय, धृतराष्ट्र तथा कौरव और पाण्डवसेना भी उसी विराट्‌रूपके ही अंग हैं—**'सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः'**।

तात्पर्य है कि जड़-चेतन, स्थावर-जंगमरूपसे जो कुछ देखने, सुनने, सोचनेमें आ रहा है, वह सब अविनाशी भगवान् ही हैं। इसका अनुभव करनेके लिये साधकको दृढ़तासे यह मान लेना चाहिये कि चाहे मेरी समझमें आये या न आये, अनुभवमें आये या न आये, स्वीकार हो या न हो, पर बात यही सच्ची है। जैसे जलके एक कणमें और समुद्रमें एक ही जल-तत्त्व परिपूर्ण है, ऐसे ही छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी प्रत्येक वस्तुमें एक ही परमात्मतत्त्व परिपूर्ण है—ऐसा मानकर वह हर समय मन-ही-मन सबको नमस्कार करता रहे। उसको वृक्ष, नदी, पहाड़, पत्थर, दीवार आदि जो कुछ भी दीखे, उसमें अपने इष्ट भगवान्‌को देखकर वह प्रार्थना करे कि 'हे नाथ! मुझे अपना प्रेम प्रदान करो; हे प्रभो! आपको मेरा नमस्कार हो'। ऐसा करनेसे उसको सब जगह भगवान् दीखने लग जायँगे; क्योंकि वास्तवमें सब कुछ भगवान् ही हैं।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं-
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं-
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥ ४१॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं-
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥ ४२॥

तव	=आपकी	**प्रणयेन**	=प्रेमसे	**च**	=और
इदम्	=इस	**अपि**	=भी	**अच्युत**	=हे अच्युत!
महिमानम्	=महिमाको	**प्रसभम्**	=हठपूर्वक (बिना सोचे-समझे)	**अवहासार्थम्**	=हँसी-दिल्लगीमें,
अजानता	=न जानते हुए	**हे, कृष्ण**	='हे कृष्ण!	**विहारशय्यासन-भोजनेषु**	=चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते समय
सखा	='मेरे सखा हैं'	**हे, यादव**	=हे यादव!		
इति	=ऐसा	**हे, सखे**	=हे सखे!'		
मत्वा	=मानकर	**इति**	=इस प्रकार		
मया	=मैंने	**यत्**	=जो कुछ		
प्रमादात्	=प्रमादसे	**उक्तम्**	=कहा है;		
वा	=अथवा			**एकः**	=अकेले

अथवा	= अथवा	**असत्कृतः**	= तिरस्कार (अपमान) किया गया	**तत्**	= वह सब
तत्समक्षम्	= उन (सखाओं, कुटुम्बियों आदि)के सामने	**असि**	= है;	**त्वाम्**	= आपसे
यत्	= (मेरे द्वारा आपका) जो कुछ	**अप्रमेयम्**	= हे अप्रमेयस्वरूप!	**अहम्**	= मैं
				क्षामये	= क्षमा करवाता हूँ अर्थात् आपसे क्षमा माँगता हूँ।

विशेष भाव—अर्जुनका भगवान्‌के साथ सखा भाव था, पर भगवान्‌के ऐश्वर्यको देखनेसे वे अपना सखा भाव भूल जाते हैं और भगवान्‌को देखकर आश्चर्य करते हैं, भयभीत होते हैं! उनके मनमें यह सम्भावना ही नहीं थी कि भगवान् ऐसे हैं!

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो-
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥

त्वम्	= आप (ही)	**च**	= और	**त्वत्समः**	= आपके समान
अस्य	= इस	**गरीयान्**	= (आप ही) गुरुओंके	**अपि**	= भी
चराचरस्य	= चराचर	**गुरुः**	= महान् गुरु हैं।	**अन्यः**	= दूसरा कोई
लोकस्य	= संसारके	**अप्रतिम-प्रभाव**	= हे अनन्त प्रभावशाली भगवन्!	**न**	= नहीं
पिता	= पिता	**लोकत्रये**	= इस त्रिलोकीमें	**अस्ति**	= है, (फिर आपसे)
असि	= हैं,			**अभ्यधिकः**	= अधिक तो
पूज्यः	= (आप ही) पूजनीय हैं			**कुतः**	= हो ही कैसे सकता है!

विशेष भाव—अर्जुन लौकिक दृष्टिसे, संसारकी सत्ताको लेकर कहते हैं कि इस त्रिलोकीमें आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक कैसे हो सकता है! परन्तु वास्तविक दृष्टिसे जब भगवान्‌के सिवाय और कुछ है ही नहीं, तो फिर उसमें समान और अधिक कहना बनता ही नहीं।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं-
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥ ४४ ॥

तस्मात् = इसलिये
ईड्यम् = स्तुति करनेयोग्य
त्वाम् = आप
ईशम् = ईश्वरको
अहम् = मैं
कायम् = शरीरसे
प्रणिधाय = लम्बा पड़कर,
प्रणम्य = प्रणाम करके
प्रसादये = प्रसन्न करना चाहता हूँ।
पिता = पिता
इव = जैसे
पुत्रस्य = पुत्रके,
सखा = मित्र
इव = जैसे
सख्युः = मित्रके (और)
प्रियः = पति (जैसे)
प्रियाय = पत्नीके (अपमान सह लेता है),
देव = (ऐसे ही) हे देव! (आप मेरे द्वारा किया गया अपमान)
सोढुम् = सहनेमें अर्थात् क्षमा करनेमें
अर्हसि = समर्थ हैं।

~~~

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं-
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥ ४५॥

अदृष्टपूर्वम् = जिसको पहले कभी नहीं देखा, उस रूपको
दृष्ट्वा = देखकर (मैं)
हृषितः = हर्षित
अस्मि = हो रहा हूँ
च = और (साथ-ही-साथ)
भयेन = भयसे
मे = मेरा
मनः = मन
प्रव्यथितम् = अत्यन्त व्यथित हो रहा है। (अतः आप)
मे = मुझे (अपने)
तत्, एव = उसी
देवरूपम् = देवरूप (शान्त विष्णुरूप) को
दर्शय = दिखाइये।
देवेश = हे देवेश!
जगन्निवास = हे जगन्निवास!
प्रसीद = (आप) प्रसन्न होइये।

~~~

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते॥ ४६॥

अहम् = मैं
त्वाम् = आपको
तथा = वैसे
एव = ही
किरीटिनम् = किरीट-(मुकुट) धारी,
गदिनम् = गदाधारी (और)
चक्रहस्तम् = हाथमें चक्र लिये हुए अर्थात् चतुर्भुज-रूपसे
द्रष्टुम् = देखना
इच्छामि = चाहता हूँ।

	(इसलिये)	**तेन, एव**	=उसी		पद्मसहित)
सहस्रबाहो	=हे सहस्रबाहो!	**चतुर्भुजेन, रूपेण**	=चतुर्भुज-रूपसे	**भव**	=हो
विश्वमूर्ते	=हे विश्वमूर्ते! (आप)		(शंख-चक्र-गदा-		जाइये।

विशेष भाव—यद्यपि मूल श्लोकमें भगवान्‌को गदा और चक्र धारण किये हुए बताया गया है, तथापि '**चतुर्भुजेन**' पद आनेसे यहाँ चारों भुजाओंमें गदा और चक्रके साथ-साथ शंख और पद्म भी समझ लेने चाहिये।

~~~~

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं-
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं-
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्॥ ४७॥

श्रीभगवान् बोले—

अर्जुन	=हे अर्जुन!	**परम्**	=अत्यन्त श्रेष्ठ,	**तव**	=तुझे
मया	=मैंने	**तेजोमयम्**	=तेजस्वरूप,	**दर्शितम्**	=दिखाया है,
प्रसन्नेन	=प्रसन्न होकर	**आद्यम्**	=सबका आदि (और)	**यत्**	=जिसको
आत्मयोगात्	=अपनी सामर्थ्यसे	**अनन्तम्**	=अनन्त	**त्वदन्येन**	=तुम्हारे सिवाय
मे	=मेरा	**विश्वम्**	=विश्व-	**न, दृष्टपूर्वम्**	=पहले किसीने नहीं
इदम्	=यह	**रूपम्**	=रूप		देखा है।

~~~~

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर॥ ४८॥

कुरुप्रवीर	=हे कुरुश्रेष्ठ!	**न, वेदयज्ञाध्ययनैः**	= न वेदोंके पाठसे,	**दानैः**	=दानसे,
नृलोके	=मनुष्यलोकमें		न यज्ञोंके अनुष्ठान-	**न**	=न
एवंरूपः	=इस प्रकारके		से, न शास्त्रोंके	**उग्रैः**	=उग्र
	विश्वरूपवाला		अध्ययनसे,*	**तपोभिः**	=तपोंसे
अहम्	=मैं	**न**	=न	**च**	=और

* अगर 'वेदयज्ञाध्ययनैः' पदका अर्थ 'वेदोंका अध्ययन और यज्ञोंका अनुष्ठान' लिया जाय तो वेदोंके अध्ययनके अन्तर्गत शास्त्रोंका अध्ययन भी आ जाता है; क्योंकि सभी शास्त्र वेदोंका ही अनुगमन करते हैं। परन्तु खुलासा करनेके लिये यहाँ शास्त्रोंका अध्ययन अलगसे लिया गया है।

न	=न	**त्वदन्येन**	=तेरे (कृपापात्रके) सिवाय और किसीके द्वारा	**द्रष्टुम्**	=देखा जा
क्रियाभिः	=मात्र क्रियाओंसे			**शक्यः**	=सकता हूँ।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो-
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं-
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य॥ ४९॥

इदम्	=यह	**मा**	=नहीं होनी चाहिये	**त्वम्**	=तू
मम	=मेरा	**च**	=और	**पुनः**	=फिर
ईदृङ्	=इस प्रकारका	**विमूढभावः**	=विमूढभाव (भी)	**तत्, एव**	=उसी
घोरम्	=उग्र	**मा**	=नहीं होना चाहिये। (अब)	**मे**	=मेरे
रूपम्	=रूप			**इदम्**	=इस (चतुर्भुज)
दृष्ट्वा	=देखकर	**व्यपेतभीः**	=निर्भय (और)	**रूपम्**	=रूपको
ते	=तुझे	**प्रीतमनाः**	=प्रसन्न मनवाला होकर	**प्रपश्य**	=अच्छी तरह देख ले।
व्यथा	=व्यथा				

विशेष भाव—अर्जुनने घबराकर भगवान्‌से कहा—**'तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्'** (११। ४२) तो भगवान् यहाँ कहते हैं कि मैं चाहे शान्त अथवा उग्र किसी भी रूपमें दिखायी दूँ, हूँ तो मैं तुम्हारा सखा ही! तुम डर गये तो यह तुम्हारी मूढ़ता है, मित्रतामें ढिलाई है! जो कुछ दीख रहा है, वह सब मेरी ही लीला है। इसमें घबराने-की क्या बात है? मित्रतामें कौन बड़ा और कौन छोटा?

भगवान् ही जगत्-रूपसे प्रकट हुए हैं, इसलिये यह जगत् भगवान्‌का आदि अवतार कहा जाता है—**'आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य'** (श्रीमद्भा० २। ६। ४१)। जैसे भगवान्‌ने राम, कृष्ण आदि रूपोंसे अवतार लिया है, ऐसे ही जगत्-रूपसे भी अवतार लिया है। इसको अवतार इसलिये कहा है कि इसमें भगवान् दृश्यरूपसे दीखनेमें आ जाते हैं। अवतारके समय लौकिक दृष्टिसे दीखनेपर भी भगवान् सदा अलौकिक ही रहते हैं*। परन्तु राग-द्वेषके कारण अज्ञानियोंको भगवान् लौकिक दीखते हैं (गीता ७। २४-२५, ९। ११)।

भगवान् शान्त अथवा उग्र किसी भी रूपमें आयें, उनकी मरजी है। सुन्दर दृश्य हो, पुष्प खिले हों, सुगन्ध आ रही हो तो वह भी भगवान्‌का रूप है और मांस, हड्डियाँ, मैला पड़ा हो, दुर्गन्ध आ रही हो तो वह भी भगवान्‌का रूप है। भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है। भगवान्‌ने राम, कृष्ण आदि रूप भी धारण किये और मत्स्य, कच्छप,

---

* **अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।**
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
(गीता ४। ६)

'मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।'

वराह आदि रूप भी धारण किये। वे कोई भी रूप धारण करें, हैं तो भगवान् ही! रूप तो भगवान्‌का है और क्रिया उनकी लीला है। कोई पाप, अन्याय करता हुआ दीखे तो समझे कि भगवान् कलियुगकी लीला कर रहे हैं। वे जैसा रूप धारण करते हैं, वैसी ही लीला (क्रिया) करते हैं*। मूर्तिका रूप (अर्चावतार) धारण करके वे मूर्तिकी तरह ही अचल रहनेकी लीला करते हैं। मूर्तिरूप धारण करके क्रिया करनेमें शोभा नहीं है, प्रत्युत क्रिया न करनेमें ही शोभा है, अन्यथा वह अर्चावतार कैसे रहेगा? वराह (सूअर) का रूप धारण करके वे वराहकी तरह क्रिया करते हैं और मनुष्यका रूप धारण करके वे मनुष्यकी तरह क्रिया करते हैं†। वे कोई भी रूप धारण करके कैसी ही क्रिया करें, उससे भक्तोंके हृदयमें कोई विकार नहीं होता; क्योंकि उनकी दृष्टिमें एक भगवान्‌के सिवाय और कुछ है ही नहीं, हुआ ही नहीं, होगा ही नहीं, होना सम्भव ही नहीं।

हमें जो संसार दीखता है, यह भगवान्‌का विराट्‌रूप नहीं है; क्योंकि विराट्‌रूप तो दिव्य और अव्यय है, पर दीखनेवाला संसार भौतिक और नाशवान् है। जैसे हमें भौतिक वृन्दावन तो दीखता है, पर उसके भीतरका दिव्य वृन्दावन नहीं दीखता, ऐसे ही हमें भौतिक विश्व तो दीखता है, पर उसके भीतरका दिव्य विश्व (विराट्‌रूप) नहीं दीखता, ऐसा दीखनेमें कारण है—सुखभोगकी इच्छा। भोगेच्छाके कारण ही जड़ता, भौतिकता, मलिनता आयी है। अगर भोगेच्छाको लेकर संसारमें आकर्षण न हो तो सब कुछ चिन्मय विराट्‌रूप ही है।

तत्त्वबोध होनेपर ज्ञानीको तो संसार चिन्मयरूपसे दीखता है, पर प्रेमी भक्तको वह माधुर्यरूपसे दीखता है। माधुर्यरूपसे दीखनेपर जैसे अपने शरीरमें सबकी स्वाभाविक प्रियता होती है, ऐसे ही भक्तकी मात्र प्राणियोंके साथ स्वाभाविक प्रियता होती है। परन्तु अर्जुनने ऐश्वर्यरूपसे भगवान्‌का विराट्‌रूप देखा था; क्योंकि वे वही रूप देखना चाहते थे—'**द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम**' (११। ३)। माधुर्यमें प्रियता विशेष होती है और ऐश्वर्यमें प्रभाव विशेष होता है। तात्पर्य है कि दिव्य विराट्‌रूप एक होनेपर भी भावनाके अनुसार अनेक रूपोंमें दीखता है और अनेकरूपसे दीखनेपर भी एक ही रहता है। एकतामें अनेकता और अनेकतामें एकता भगवान्‌की विलक्षणता, अलौकिकता, विचित्रता है।

~~~

सञ्जय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं-
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा॥ ५०॥

संजय बोले—

वासुदेवः	= वासुदेव भगवान्‌ने	**भूयः**	= फिर	**दर्शयामास**	= दिखाया
अर्जुनम्	= अर्जुनसे	**तथा**	= उसी प्रकारसे	**च**	= और
इति	= ऐसा	**स्वकम्**	= अपना	**महात्मा**	= महात्मा श्रीकृष्णने
उक्त्वा	= कहकर	**रूपम्**	= रूप (देवरूप)	**पुनः**	= पुनः

* **जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।**
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥ (मानस, उत्तर० ७२ ख)

† देखें, गीता ४/९ की परिशिष्ट-व्याख्या
~~~

सौम्यवपुः	=सौम्यरूप (द्विभुज मानुषरूप)	**एनम्**	=इस	**आश्वासयामास**	=आश्वासन दिया।
भूत्वा	=होकर	**भीतम्**	=भयभीत अर्जुनको		

~~~~~

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः॥५१॥

अर्जुन बोले—

जनार्दन	=हे जनार्दन!	**रूपम्**	=रूपको	**अस्मि**	=हूँ (और)
तव	=आपके	**दृष्ट्वा**	=देखकर (मैं)	**प्रकृतिम्**	=अपनी स्वाभाविक स्थितिको
इदम्	=इस	**इदानीम्**	=इस समय		
सौम्यम्	=सौम्य	**सचेताः**	=स्थिरचित्त	**गतः**	=प्राप्त हो गया हूँ।
मानुषम्	=मनुष्य-	**संवृत्तः**	=हो गया		

विशेष भाव— भगवान्‌का सौम्यरूप द्विभुज होनेके कारण अर्जुनने उसको मनुष्यरूप कहा है। भगवान् श्रीकृष्ण द्विभुज थे। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आया है—

त्वमेव भगवानाद्यो निर्गुणः प्रकृतेः परः।
अर्द्धाङ्गो द्विभुजः कृष्णोऽप्यर्द्धाङ्गेन चतुर्भुजः॥

(प्रकृति० १२। १५)

'आप सबके आदि, निर्गुण और प्रकृतिसे अतीत भगवान् ही अपने आधे अंगसे द्विभुज कृष्ण और आधे अंगसे चतुर्भुज विष्णुके रूपमें प्रकट हुए हैं।'

द्विभुजो राधिकाकान्तो लक्ष्मीकान्तश्चतुर्भुजः।
गोलोके द्विभुजस्तस्थौ गोपैर्गोपीभिरावृतः॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह।
सर्वांशेन समौ तौ द्वौ कृष्णनारायणौ परौ॥

(प्रकृति० ३५। १४-१५)

'द्विभुज कृष्ण राधिकापति हैं और चतुर्भुज विष्णु लक्ष्मीपति हैं। कृष्ण गोप-गोपियोंसे आवृत होकर गोलोकमें और विष्णु लक्ष्मीके साथ (पार्षदोंसहित) वैकुण्ठमें स्थित हैं। वे कृष्ण और विष्णु—दोनों सब प्रकारसे समान अर्थात् एक ही हैं।'

तात्पर्य है कि द्विभुजरूप (कृष्ण), चतुर्भुजरूप (विष्णु) और सहस्रभुजरूप (विराट्‌रूप)—तीनों एक ही समग्र भगवान्‌के रूप हैं।

~~~~~

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५२ ॥

श्रीभगवान् बोले—

मम	= मेरा	**सुदुर्दर्शम्**	= इसके दर्शन अत्यन्त ही दुर्लभ हैं।	**रूपस्य**	= रूपको
इदम्	= यह				
यत्	= जो			**नित्यम्,**	
रूपम्	= (चतुर्भुज) रूप	**देवाः**	= देवता	**दर्शनकाङ्क्षिणः**	= देखनेके लिये नित्य लालायित रहते हैं।
दृष्टवान्,		**अपि**	= भी		
असि	= (तुमने) देखा है,	**अस्य**	= इस		

विशेष भाव—यद्यपि देवताओंका शरीर दिव्य होता है, पर भगवान्‌का शरीर उससे भी विलक्षण होता है। देवताओंका शरीर भौतिक तेजोमय और भगवान्‌का शरीर चिन्मय होता है। भगवान्‌का शरीर सत्-चित्-आनन्दमय, नित्य, अलौकिक और अत्यन्त दिव्य होता है*। अतः देवता भी भगवान्‌को देखनेके लिये लालायित रहते हैं। जैसे साधारण लोगोंमें नये-नये स्थान देखनेका शौक रहता है, ऐसे ही देवताओंमें भगवान्‌को देखनेका शौक है, प्रेम नहीं। तात्पर्य है कि जैसे भक्त प्रेमपूर्वक भगवान्‌को देखना चाहते हैं, ऐसे देवता नहीं देखना चाहते। इसलिये भगवान् प्रेमी भक्तोंके तो अधीन हैं, पर देवताओंके अधीन नहीं हैं।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥ ५३ ॥

यथा	= जिस प्रकार (तुमने)	**अहम्**	= (चतुर्भुज रूपवाला) मैं	**दानेन**	= दानसे
		न	= न तो	**च**	= और
माम्	= मुझे	**वेदैः**	= वेदोंसे,	**न**	= न
दृष्टवान्	= देखा	**न**	= न	**इज्यया**	= यज्ञसे ही
असि	= है,	**तपसा**	= तपसे,	**द्रष्टुम्**	= देखा
एवंविधः	= इस प्रकारका	**न**	= न	**शक्यः**	= जा सकता हूँ।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥ ५४॥

---

* **चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥**
(मानस, अयोध्या० १२७। ३)

तु	=परन्तु	**अनन्यया,**		**द्रष्टुम्**	=(साकाररूपसे) देखनेमें
परन्तप	=हे शत्रुतापन	**भक्त्या**	=(केवल) अनन्य-भक्तिसे ही	**च**	=तथा
अर्जुन	=अर्जुन!	**तत्त्वेन**	=तत्त्वसे	**प्रवेष्टुम्**	=प्रवेश (प्राप्त) करनेमें
एवंविधः	=इस प्रकार	**ज्ञातुम्**	=जाननेमें	**शक्यः**	=शक्य हूँ।
अहम्	=(चतुर्भुजरूपवाला) मैं	**च**	=और		

विशेष भाव—जहाँ भगवान्‌ने ज्ञानकी परानिष्ठा बतायी है, वहाँ ज्ञानसे केवल जानना और प्रवेश करना—ये दो ही बताये हैं—**'ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्'** (गीता १८। ५५) परन्तु यहाँ भक्तिसे जानना, देखना और प्रवेश करना—ये तीनों बताये हैं। भक्तिसे भगवान्‌के दर्शन भी हो सकते हैं—यह भक्तिकी विशेषता है, जबकि ज्ञानकी परानिष्ठा होनेपर भी भगवान्‌के दर्शन नहीं होते। अतः भक्तिकी विशेष महिमा है। भक्तिमें समग्रकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्मकी प्राप्तिमें जानना और प्रवेश करना—ये दो बातें हो सकती हैं, पर समग्रकी प्राप्तिमें जानना, प्रवेश करना और देखना—ये तीनों बातें होती हैं। कारण कि एकदेशीयमें एकदेशीयता होती है और समग्रमें समग्रता होती है।

~~~

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥ ५५॥

पाण्डव	=हे पाण्डव!		(और)	**सर्वभूतेषु**	=प्राणिमात्रके साथ
यः	=जो	**मद्भक्तः**	=मेरा ही प्रेमी भक्त है (तथा)	**निर्वैरः**	=वैरभावसे रहित है,
मत्कर्मकृत्	=मेरे लिये ही कर्म करनेवाला,	**सङ्गवर्जितः**	=सर्वथा आसक्ति-रहित (और)	**सः**	=वह भक्त
मत्परमः	=मेरे ही परायण			**माम्**	=मुझे
				एति	=प्राप्त होता है।

विशेष भाव—जिस भक्तिसे भगवान् चतुर्भुजरूपसे देखे जा सकते हैं, उस भक्तिका स्वरूप बताते हैं कि मनुष्य संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करके सर्वथा मेरे परायण हो जाय। **'मत्कर्मकृत्'**—यह स्थूलशरीरसे भगवान्‌के परायण होना है, **'मत्परमः'**—यह सूक्ष्म तथा कारणशरीरसे भगवान्‌के परायण होना है, और **'मद्भक्तः'**—यह स्वयंसे भगवान्‌के परायण होना है; क्योंकि 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं'—यह स्वयंकी स्वीकृति है।

'स मामेति' पदोंसे समग्रकी प्राप्ति बतायी गयी है।

~~~

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

~~~
~~~